नियमसार, २६४ कलश।

असारे सन्सारे कलि-विलसिते पाप-बहुले,
न मुक्तिर्मार्गेऽस्मिन्ननघ-जिन-नाथस्य भवति।
अतोऽध्यात्मं ध्यानं कथमिह भवेन्निर्मलधियां,
निजात्म-श्रद्धानं भव-भयहरं स्वीकृत-मिदम्।।२६४।।

श्लोकार्थ : असार संसार में,... संसार तो असार है। परमपारिणामिक भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप, इसके अतिरिक्त पूरा संसार असार है। **पाप से भरपूर कलिकाल का विलास होने पर,...** आहाहा! मोक्ष का ध्यान कहते हैं, हों! ध्यान बिलकुल नहीं, इसलिए तो मोक्ष अधिकार देखा। ध्यान है। समकित का, ज्ञान का, चारित्र का ध्यान है, परन्तु मोक्ष हो – ऐसा ध्यान अभी नहीं है। स्वरूप की स्थिरता का ध्यान जो यह अन्दर, ऐसा ध्यान अभी नहीं है। उसका निषेध है। मोक्ष अधिकार में... कहा न अभी ? पंचम काल में कोई ऐसा कहे कि ध्यान ही नहीं है तो वह दुर्बुद्धि है। वहाँ ऐसा आया।

यहाँ कहते हैं कि **पाप से भरपूर कलिकाल का विलास होने पर, इस निर्दोष जिननाथ के मार्ग में मुक्ति नहीं है।** मुक्ति की बात है यहाँ। मुक्ति सम्बन्धी का जो ध्यान, वह अभी नहीं है। आहाहा! एक ओर ध्यान नहीं है – ऐसा कहे, वह भी मिथ्यादृष्टि है; एक ओर ध्यान मुक्ति के लिये नहीं, यह भी यथार्थ है। दो बातें की है। आहाहा! **इस निर्दोष जिननाथ के मार्ग में मुक्ति नहीं है।** मुक्ति नहीं है। **इसलिए इस काल में अध्यात्मध्यान कैसे हो सकता है ?** केवलज्ञान-प्राप्ति हो, वैसा अध्यात्म ध्यान कैसे हो सकता है ? ऐसी बात है। समझ में आया ? ध्यान ही नहीं, यह तो पहले मोक्ष अधिकार (पाहुड़) में निषेध किया कि इस काल में आत्मा के ओर के झुकाव की ध्यानदशा ही नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह सत्य को नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया इसमें ?

अन्तर प्रभु चैतन्य भगवान परमानन्द का नाथ विराजता है, उसकी ओर का दर्शन, ज्ञान का जो ध्यान, वह नहीं – ऐसा नहीं है। आहाहा! तथा स्वरूप में आंशिक स्थिरता हो, वैसा ध्यान अभी नहीं है—ऐसा कहे, वह भी मिथ्यादृष्टि है। और इस निर्दोष जैनमार्ग में मुक्ति नहीं, इसलिए मुक्ति का इस काल में अध्यात्म ध्यान कैसे हो सकता है ? ऐसा लेना चाहिए। एकान्त लेने जाए तो... आहाहा! बाबूभाई! मोक्षपाहुड़ में ऐसा कहा, दो-तीन गाथायें हैं। इस काल में ध्यान, समकित ही नहीं है (ऐसा नहीं)। समकित, वह अन्दर का ध्यान ही है। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यवस्तु परमात्मा पूरे संसार से भिन्न, ऐसी चीज़ का भान, उसका ध्यान, यह काल में नहीं—ऐसा माने, वह भी झूठा है। आहाहा! तथा ऐसा जो मुक्ति का इस काल में... मुक्ति नहीं, इसलिए इस काल में अध्यात्म-ध्यान, मुक्ति सम्बन्धी का अध्यात्मध्यान

(नहीं है)। आहाहा! दोनों ही प्रवचन कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। मोक्षपाहुड़ में ऐसा कहा कि अभी कोई कहता है कि अन्दर दृष्टि चैतन्यमूर्ति में एकाग्र हो सकती ही नहीं। कहते हैं न वह श्रुतसागर? दिगम्बर आचार्य-साधु (कि) अभी तो शुभभाव ही होता है। आहाहा! शुभभाव तो संसार है। घोर संसार, राग है, जहर है, विकृत है, विभाव है, अजीव है, अशुद्ध है। वह है और आत्मा का सम्यग्दर्शन भी नहीं... आहाहा! यह बात भी मिथ्या है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, उसका ध्यान तो इस काल में है। यहाँ मोक्षपाहुड़ में तीन गाथा में इनकार किया है। देखी न? भाई! है न मोक्षपाहुड़ में? नहीं। तीन गाथा आयी न, उसमें यह है कि इस काल में मोक्ष नहीं, परन्तु ध्यान ही नहीं, यह बात एकदम मिथ्या है। आहाहा! इस काल में-कलिकाल में मुक्ति नहीं है। उस सम्बन्धी का अध्यात्मध्यान नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : यदि इस काल में ध्यान न माने तो सम्यग्दर्शन को ही नहीं मानता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु को ही नहीं मानता। ध्यान नहीं अर्थात् एकाग्रता नहीं है। परम स्वभाव भगवान अकेली निर्विकल्प चीज़, वही आत्मा, जिसमें संसार की गन्ध नहीं, जिसमें राग का प्रसार नहीं, जिसमें संसरण ऐसा संसार की जरा भी अन्दर गन्ध नहीं। ऐसा परमस्वभावभाव भगवान आत्मा की श्रद्धा का ध्यान और ज्ञान का ध्यान न हो, तब तो धर्म ही नहीं होगा जरा भी। तब तो अभी जैनधर्म नहीं होगा - ऐसा होगा।

मुमुक्षु : तो कुन्दकुन्दाचार्य को भी धर्म नहीं था - ऐसा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आहाहा!

यहाँ जो बात करते हैं, वह अपेक्षा से मस्तिष्क में आयी। यहाँ अपेक्षा जो करते हैं, वह कौन सी? अरे रे! **असार संसार में, पाप से भरपूर कलिकाल का विलास...** पाप से भरपूर कलिकाल का विलास **इस निर्दोष जिननाथ के मार्ग में...** इस निर्दोष जिननाथ के मार्ग में **मुक्ति नहीं है।** मोक्ष नहीं हैं, इसलिए तद्प्रमाण **इस काल में अध्यात्मध्यान कैसे हो सकता है?** केवलज्ञान ले, ऐसा अध्यात्मध्यान कैसे हो सकता है? ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वयं मुनिराज तो पोण-पोण सैकेण्ड ध्यान में...

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो मुनि हैं। ध्यान में तीन कषाय का बिलकुल अभाव है ही

नहीं—ऐसा माननेवाले भी मिथ्यादृष्टि हैं और इस निर्दोष जिननाथ के मार्ग में मुक्ति नहीं है; इसलिए उस मुक्तिसम्बन्धी अध्यात्मध्यान, वह अध्यात्मध्यान नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा परमानन्द का सागर परम पवित्र पिण्ड प्रभु, एक समय की पर्याय में जो घालमेल है, वह संसार है। द्रव्यस्वभाव तो परमात्मस्वरूप ही है। उसकी दृष्टि और उसका ज्ञान अभी न हो तो धर्म नहीं है। उसका ध्यान नहीं है, ऐसा जो माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! तथा इस पूर्णानन्द निर्दोष जिनमार्ग, जिसमें पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी केवलज्ञान का अभी अभाव है; इसलिए उस सम्बन्धी का-उस परमात्म प्राप्ति सम्बन्धी का ध्यान कैसे हो सकता है? समझ में आया इसमें कुछ? दोनों बातें? आहाहा!

इसलिए निर्मलबुद्धिवाले... देखो! यह तो आया समकित और ज्ञान। **इसलिए निर्मलबुद्धिवाले...** आहाहा! **भवभय का नाश करनेवाली...** भवभय का नाश करनेवाली **ऐसी इस निजात्मश्रद्धा को अंगीकृत करते हैं।** यह क्या आया? आहाहा! **निर्मलबुद्धिवाले भवभय का नाश करनेवाली...** आहाहा! लो! यह तो है। भव भय का नाश करनेवाली है। परन्तु भव का अभाव करके मुक्ति करनेवाला यह ध्यान नहीं है। आहाहा! सर्वथा ध्यान नहीं तो समकित ही नहीं। उसे पूर्ण ध्यान होवे, तब तो मुक्ति है, केवलज्ञान अभी है। दोनों ऐसा नहीं है। जो कहा, जिस प्रकार से, उस प्रकार से जान। 'ध्यान नहीं', यह कहा, वह आत्मा की मुक्ति हो और केवलज्ञान हो, वह ध्यान नहीं है; और 'ध्यान है'—ऐसा न माने तो अज्ञानी है। आत्मा सम्बन्धी का सम्यग्दर्शन और ज्ञान के ध्यान की बात है। समझ में आया? आहाहा!

स्वयं के स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं मोक्षपाहुड़ में कहा और यहाँ स्वयं कहा न? स्वयं ने मूल पाठ में कहा न?

जदि सक्कदि कादुं जे पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।
सत्ति-विहीणो जा जइ सद्दहणं चेव कायव्वं।।१५४।।

तो समकित तो आज है। यह तो कहा। आहाहा! पंचम भाव भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त चैतन्य रत्न से भरपूर, ऐसे भगवान की श्रद्धा और ज्ञान नहीं—ऐसा माने,

वह तो अज्ञानी है। आहाहा! और इस काल में अत्यन्त निर्दोष ऐसा जैनमार्ग, उसकी मुक्ति जो केवलज्ञान, उसका ध्यान माने तो भी वह बात झूठी है। क्योंकि वैसा ध्यान— केवलज्ञान हो, वैसा ध्यान नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इस काल में... इस काल में **अध्यात्मध्यान कैसे हो सकता है?... कैसे हो सकता है? इसलिए निर्मलबुद्धिवाले...** वापस निर्मलबुद्धिवाले कहा। तो इतना ध्यान हुआ या नहीं? आहाहा! **निर्मलबुद्धिवाले भवभय का नाश करनेवाली ऐसी इस निजात्मश्रद्धा...** निजात्मश्रद्धा - निजस्वरूप की श्रद्धा। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ अखण्डानन्द प्रभु की निजश्रद्धा अंगीकार करते हैं। आहाहा! वह तो ध्यान है परन्तु जिस ध्यान से केवल (ज्ञान) हो, वह ध्यान नहीं है। आहाहा! दोनों बात भगवान की, दोनों बात कुन्दकुन्दाचार्य की कही हुई है। आहाहा! यह भी वापस सिद्ध किया कि **निर्मलबुद्धिवाले...** है समकिती। आहाहा! आत्मा में एकाग्रता का ध्यान तो हुआ है, ऐसा **भवभय का नाश करनेवाली ऐसी इस निजात्मश्रद्धा...** निज प्रभु (की) निजात्मश्रद्धा। निज आत्मप्रभु परमात्मस्वरूपी अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त गुण की राशि, उसकी श्रद्धा को **अंगीकृत करते हैं।** आहाहा! वह श्रद्धा अर्थात् इतना विकल्प नहीं, निर्मल अनुभव है। उस श्रद्धा में अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास-स्वाद है। अनन्त गुण की शक्ति की व्यक्तता आंशिक अनन्त गुण की है। अकेली निर्मलबुद्धि नहीं। आहाहा! समझ में आया?

निर्मलबुद्धिवाले भवभय का... आहाहा! भवभय का **नाश करनेवाली...** अरे! देह छूटकर तू कहाँ जाएगा? कहाँ अवतार होगा? आहाहा! यह भव देह छूटा, परन्तु आत्मा की सत्ता तो अनादि है। देह का नाश होगा, राख होगी। आत्मा तो सत्ता है (तो) जाएगा कहाँ? प्रभु! यह देह छूटने के साथ ही दूसरा अवतार लेगा। दूसरे अवतार में जाएगा। आहाहा! तो ऐसी इस निजात्मश्रद्धा को **निर्मलबुद्धिवाले भवभय का नाश करनेवाली...** देखो, उसे भी फिर भव नहीं। देखा! भले एकाध-दो भव हों, तो भी केवलज्ञानी को भव नहीं होते और इसे कदाचित् होवें तो भी वे गिनती में गिनने में नहीं आते क्योंकि एकाध-दो भव हों, वे सब ज्ञान में ज्ञेय गिनने में आया है। आहाहा! केवलज्ञान के ध्यान का तो निषेध किया और यह निर्मल श्रद्धा भवभय की हरनेवाली, इसका स्वीकार किया। आहाहा! समझ में आया इसमें? हरिभाई!

मुमुक्षु : आठ सौ वर्ष पहले इतना पाप से भरा हुआ संसार था, इसलिए मुनि देव ने ऐसी भाषा रखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप से भरा हुआ पूरा संसार है। इसलिए उसे अध्यात्मध्यान केवलज्ञान का नहीं होता। इतनी बात है। यह अपेक्षा है। केवलज्ञान का ध्यान नहीं होता। पाप से भरा हुआ है परन्तु पाप से भरा हुआ है, इसलिए समकित न हो तो निर्मल बुद्धिवालों को भवभय का हरनेवाला... आहाहा! समझ में आया? यह अटपटी गाथा आयी।

भवभय के हरनेवाले। भव भी फिर न मिले। आहाहा! एकाध-दो भव हो, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। आहाहा! थोड़े राग-द्वेषादि हों, वे भी ज्ञान का ज्ञेय है। ऐसी स्थिति को अंगीकार कर। ऐसी निजात्मश्रद्धा को, निजात्मश्रद्धा। मुक्ति न हो, इसलिए परमात्मा की श्रद्धा रखना, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! मोक्ष नहीं हो, इसलिए पंच परमेष्ठी की श्रद्धा रखना, ऐसा नहीं कहा। क्योंकि वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! इसलिए निर्विकल्प ध्यान तो हुआ है। निजात्मध्यान को (श्रद्धा को) अंगीकृत करता है। आहाहा!

निर्मलबुद्धिवाले भवभय का नाश करनेवाली... आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भव का भय नहीं है। इसे अब भव नहीं है। एकाध-दो भव हों, वे भी ज्ञान में ज्ञेयरूप से हैं। आहाहा! इसलिए भवभय का नाश करनेवाली कहा है न? एकाध-दो भव रखनेवाली, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया? भवभय का नाश करनेवाली। अनन्त भव जो हैं, उन भव का नाश करनेवाली **ऐसी इस निजात्मश्रद्धा...** भगवान स्वयं परमानन्द की मूर्ति विराजमान है। असार संसार में पाप से भरा हुआ कलिकाल है, परन्तु प्रभु तो पूर्ण भरपूर पड़ा है। आहाहा! वह तो पर्याय में यह बात है। द्रव्य तो परिपूर्ण भगवान अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता की ईश्वरता से पूरा भरा है। आहाहा! उसकी श्रद्धा रख। **भवभय का नाश करनेवाली ऐसी इस निजात्मश्रद्धा...** निज-आत्म-श्रद्धा— अपने आत्मा की श्रद्धा को अंगीकार करते हैं। आहाहा! शान्तिभाई!

मुमुक्षु : भले द्रव्यमोक्ष न हो परन्तु भावमोक्ष तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। भावमोक्ष तो तेरहवें में। भावमोक्ष भी नहीं। मुक्ति है, मुक्तस्वरूप ऐसे अनुभव की प्रतीतिरूपी मुक्ति है। इतनी तो श्रद्धा की अपेक्षा है क्योंकि

आत्मा मुक्तस्वरूप है। वह तो मुक्तस्वरूप ही है। उसे मुक्ति हुई है, ऐसा नहीं। वह तो पर्याय में मुक्ति और बन्ध है। स्वयं तो मुक्तस्वरूप भगवान है। उसकी मुक्ति होना, ऐसा है नहीं, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि पूर्ण मुक्ति जो पर्याय में होती है, उस मुक्ति का अभी अभाव है। उस मुक्ति के लिये जो ध्यान चाहिए, उस ध्यान का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है परन्तु भाव जरा अटपटा है। एक ओर कहना कि ध्यान नहीं तथा एक ओर कहना कि ध्यान है। आहाहा!

गाथा-१५५

जिणकहियपरमसुत्ते पडिकमणादि य परीक्खऊण फुडं।
मोणव्वएण जोई णिय-कज्जं साहए णिच्चं।।१५५।।

जिनकथितपरमसूत्रे प्रतिक्रमणादिकं परीक्षयित्वा स्फुटम्।
मौन-व्रतेन योगी निज-कार्यं साधयेन्नित्यम्।।१५५।।

इह हि साक्षादन्तर्मुखस्य परमजिनयोगिनः शिक्षणमिदमुक्तम्। श्रीमदर्हन्मुखारविन्दविनिर्गतसमस्तपदार्थगर्भीकृतचतुरसन्दर्भे द्रव्यश्रुते शुद्धनिश्चयनयात्मकपरमात्मध्यानात्मकप्रतिक्रमणप्रभृतिसत्क्रियां बुद्ध्वा केवलं स्वकार्यपरः परमजिनयोगीश्वरः प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तवचनरचनां परित्यज्य निखिलसङ्गव्यासङ्गं मुक्त्वा चैकाकीभूयं मौनव्रतेन सार्धं समस्तपशुजनैः निन्द्यमानोऽप्यभिन्नः सन् निजकार्यं निर्वाणवामलोचनासम्भोगसौख्यमूलमनवरतं साधयेदिति।

पूरा परख प्रतिक्रमण आदिक को परम जिन सूत्र में।
रे साधिये निज कार्य अविरल साधु! रत व्रत मौन में॥१५५॥

अन्वयार्थ : [जिनकथितपरमसूत्रे] जिनकथित परम सूत्र में [प्रतिक्रमणादिकं स्फुटम् परीक्षयित्वा] प्रतिक्रमणादिक की स्पष्ट परीक्षा करके [मौनव्रतेन] मौनव्रत सहित [योगी] योगी को [निजकार्यम्] निज कार्य [नित्यम्] नित्य [साधयेत्] साधना चाहिए।

टीका : यहाँ साक्षात् अन्तर्मुख परमजिनयोगी को यह शिक्षा दी गयी है।

श्रीमद् अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए समस्त पदार्थ जिसके भीतर समाये हुए हैं, ऐसी चतुरशब्दरचनारूप द्रव्यश्रुत में शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को जानकर, केवल स्वकार्य में परायण परमजिनयोगीश्वर

को प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना को परित्यागकर, सर्वसंग की आसक्ति को छोड़कर अकेला होकर, मौनव्रत सहित, समस्त पशुजनों (पशु समान अज्ञानी मूर्ख मनुष्यों) द्वारा निन्दा किये जाने पर भी *अभिन्न रहकर, निजकार्य को—कि जो निजकार्य निर्वाणरूपी सुलोचना के सम्भोगसौख्य का मूल है उसे—निरन्तर साधना चाहिए।

गाथा - १५५ पर प्रवचन

गाथा १५५

जिणकहियपरमसुत्ते पडिकमणादि य परीक्खऊण फुडं।
मोणव्वएण जोई णिय-कज्जं साहए णिच्चं।।१५५।।

पूरा परख प्रतिक्रमण आदिक को परम जिन सूत्र में।
रे साधिये निज कार्य अविरल साधु! रत व्रत मौन में॥१५५॥

लो! मोक्ष के लिये चाहिए, वह ध्यान नहीं है परन्तु ऐसा तो मौनपना कुछ है। उसका निषेध नहीं किया। आहाहा! इससे जिसमें ऐसी दशा न हो, उसे भी मानना, अभी मुनिपना कहा है, इसलिए जैसी दशा नहीं है, उसे मानना-ऐसा भी नहीं है। हंस कहे हैं... मोक्षमार्गप्रकाशक में (यह बात आती है) कि भाई! हंस अभी हैं परन्तु हंस दिखायी नहीं देते, इसलिए कौवे को हंस माना जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे! प्रभु! प्रभु! तेरे हित की बात है। सभी जीवों के हित की बात है। आहाहा! मुनिपना नहीं है और मुनिपना माने, प्रभु! तुझे दुःख होगा। आहाहा! क्योंकि विपरीत मान्यता में दुःख की ज्वाला है। आहाहा! मिथ्यात्व महा दुःख की ज्वाला है। कोई प्राणी दुःखी होवे, ऐसा धर्मी को तो होता नहीं। आहाहा!

सभी प्राणी भगवान होओ, आठ कर्मरहित होओ। आहाहा! आत्मा का ध्यान करके पूर्णानन्द की प्राप्ति करो, ऐसी भावना होती है। आहाहा! उन्हें किसी के प्रति बैर-विरोध होता नहीं, किसी के प्रति यह संसार में भटके तो अच्छा-ऐसा होता नहीं। आहाहा! सभी

* **अभिन्न=छिन्नभिन्न हुए बिना; अखण्डित; अच्युत।**

भगवान हैं। शक्ति से-स्वभाव से तो भगवान हैं, पर्याय में भगवान होओ और हो सको, ऐसा है, ऐसा आचार्य का पुकार है। आहाहा! तथापि यहाँ इनकार करते हैं कि मुक्ति नहीं है। मुक्ति नहीं है परन्तु भव का अभाव होने की स्थिति है। भव एकाध-दो रहे, फिर यह प्रश्न नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

पूरा परख प्रतिक्रमण आदिक को परम जिन सूत्र में।
रे साधिये निज कार्य अविरल साधु! रत व्रत मौन में॥१५५॥

टीका : यहाँ साक्षात् अन्तर्मुख परमजिनयोगी को... यहाँ मोक्ष का ध्यान नहीं है, ऐसा कहा, परन्तु ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं कहा। ऐसा तो यहाँ है। ऐसा हो सकता है। जिसमें नहीं इसलिए उसमें हो सकता है, ऐसा कहा, इसलिए यहाँ लागू किया, ऐसा नहीं। अभी ऐसा मौनव्रत और मुनिपना है। इसलिए फिर जिसमें वह है ही नहीं, उसे मानना, ऐसा कुछ नहीं है। यह तो ऐसी वस्तुस्थिति है। किसी समय किसी को यह दशा होती है। आहाहा!

यहाँ साक्षात् अन्तर्मुख परमजिनयोगी को... देखा! उस रूप से ध्यान का निषेध किया कि केवल (ज्ञान)-मुक्ति (नहीं है), परन्तु यहाँ **अन्तर्मुख परमजिनयोगी को यह शिक्षा दी गयी है।** अन्तर्मुख जिनयोगी को, परमजिनयोगी को, आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द से सर्वांग पूर्ण से भरपूर भगवान, उसे परमयोगीजिनेश्वर, परम मुनि स्वयं उसमें जुड़ान करके... आहाहा! यह शिक्षा दी गयी है। परमयोगी अन्दर में जुड़ जा, भले मुक्ति नहीं परन्तु परम योग अन्दर जुड़ जाए, अन्तर्ध्यान में जुड़ जा। आहाहा! पूर्ण परमात्मा, जिसमें पर्याय का भी अभाव है, ऐसे पंचम भाव में साक्षात् स्थिर हो। आहाहा! ऐसी बात है।

श्रीमद् अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए... श्रीमन्त-आत्मलक्ष्मीवाले अरहन्त के मुखरूपी कमल से निकले हुए **समस्त पदार्थ जिसके भीतर समाये हुए हैं, ऐसी चतुरशब्दरचनारूप द्रव्यश्रुत में शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को जानकर,...** आहाहा! जानकर (अर्थात्) यह जानकर। आहाहा! प्रभु के श्रीमुख से निकली हुई वाणी। मुख से तो शब्द कहा है, बाकी पूरे शरीर में से वाणी आती है। ओम तो पूरे शरीर में से आता है। ॐध्वनि। होंठ बन्द हो, कण्ठ बन्द हो, परन्तु दुनिया की भाषा ऐसी है, इसलिए उसे इस प्रकार से कहा है। आहाहा!

मुखारविन्द से निकले हुए समस्त पदार्थ जिसके भीतर समाये हुए हैं, ऐसी चतुरशब्दरचनारूप द्रव्यश्रुत में शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप... आहाहा! ऐसा भी कहा है यह। भगवान के मुख से निकले हुए द्रव्यश्रुत में भी यह कहा है। क्या? **शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया...** यह सत्क्रिया है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा के मुखारविन्द से निकली हुई जगत के चतुर शब्द की रचना। है न? **द्रव्यश्रुत में...** इस शास्त्र में **शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप...** शास्त्र में यह कहा है। व्यवहार कहा है, वह जानने के लिये कहा (कहा है), निश्चय कहा है, वह आदरने के लिये, अंगीकार करने के लिये (कहा है)। आहाहा। द्रव्यश्रुत में व्यवहार भी आता है, परन्तु व्यवहार है, उसका विषय है, पर्याय है, ऐसा बतलाने को (आया है)। आहाहा! जानकर छोड़ दे। और करना क्या? **शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप...** लो! केवली का ध्यान नहीं परन्तु यह ध्यान है। आहाहा! केवलज्ञान होवे, वैसा ध्यान नहीं परन्तु भगवान के मुख में से निकली हुई वाणी में इस काल के लिए भी (ऐसा ध्यान है)। आहाहा!

शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को जानकर,... उसमें यह कहा है। वीतराग की वाणी में सत्क्रिया—प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया (कही है)। विकल्प की नहीं। प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान और व्यवहार, वह नहीं। आहाहा! अन्तर में सत्क्रिया अन्तर के अवलम्बन से हो, वह सत्क्रिया उस सूत्र में कही है। आहाहा! भगवान के श्रीमुख से निकली हुई वाणी में **द्रव्यश्रुत में शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को जानकर,...** कही है, उसे जानकर न? कही है, उसे जानकर न? आहाहा! दूसरे प्रकार से (कहें तो) भगवान के मुख में से निकली हुई वाणी अभी तक चलती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसका विरह नहीं है। आहाहा! **सत्क्रिया को जानकर,...** ऐसा शब्द ही कैसे हो सकता है? समझ में आया? इस काल में भी द्रव्यश्रुत में निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रत्याख्यान, निश्चय आलोचना द्रव्यश्रुत में कही है। आहाहा! इस काल में भी यह कहा है। वह वाणी चली आती है। आहाहा!

द्रव्यश्रुत में शुद्धनिश्चयनयात्मक... शुद्ध निश्चयस्वरूप **परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया...** कौन सी क्रिया? कि परमात्मा के ध्यानस्वरूप। देखो! यहाँ

ध्यान लिया। वह तो केवलज्ञानी का ध्यान नहीं, परन्तु साधक का ध्यान, मुनि के योग्य ध्यान है, वह ध्यान है। तीन कषाय का अभाव करके, सत्क्रिया को मुनि करे, शास्त्र में लिखी है, अर्थात् शास्त्र चले आते हैं। उन शास्त्रों में यह कहा है। उसमें से यह जानकर। उनमें कहा है, उसे जानकर। आहाहा! उनमें व्यवहार कहा है, उसे जानकर, ऐसा नहीं कहा। आहाहा!

भगवान की वाणी त्रिलोकनाथ की वाणी चली आती है। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। भगवान के मुखारविन्द से निकली हुई। आहाहा! उस वाणी में वर्तमान में **शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि...** प्रत्याख्यान, आलोचना ऐसी सत्क्रिया है। उसे जानकर... आहाहा! उसका ज्ञान करके **केवल स्वकार्य में परायण...** आहाहा! मुक्ति नहीं है, तथापि यह है। आहाहा! केवल अकेला स्वकार्य में परायण... आहाहा! अपने आत्मा के आनन्द के कार्य में तत्पर। आहाहा! ऐसे मुनि को... आहाहा! **परमजिनयोगीश्वर को प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना को परित्यागकर,...** ऐसे मुनि शुभ और अशुभराग को छोड़कर, शुभ और अशुभ वचनरचना को छोड़कर... आहाहा! पंचम काल में यह है, यह हो सकता है। आहाहा! प्रशस्त अर्थात् समस्त **वचनरचना को परित्यागकर,...** परित्यागकर, समस्त प्रकार से छोड़कर **सर्वसंग की आसक्ति को छोड़कर...** वचन को छोड़कर परन्तु फिर सर्वसंग की आसक्ति को छोड़कर। आहाहा! यदि परद्रव्य का संग करने जाएगा तो वहाँ विकल्प उठेंगे। आहाहा!

सर्वसंग की आसक्ति को छोड़कर... इसमें क्या बाकी रखा? गुरु को बाकी रखा? देव को बाकी रखा? आहाहा! सर्वसंग को छोड़कर। वर्तमान ऐसा पंचम काल है, कलिकाल है, अकाल जैसा है, दग्ध काल है, तथापि ऐसा हो सकता है। आहाहा! **स्वकार्य में परायण परमजिनयोगीश्वर को...** आहाहा! सर्वसंग की आसक्ति को छोड़कर। सर्व का परिचय छोड़कर अकेला भगवान का परिचय कर। असंग तत्त्व का संग कर। आहाहा! इसका नाम निश्चयप्रतिक्रमण और निश्चयप्रत्याख्यान। ऐसी बात है। सम्प्रदाय में भी सुनने को मिले, ऐसा नहीं है और बाहर में सब मना ले। व्यवहार है न? व्यवहार है न? किसने इनकार किया है? व्यवहार से होता है? वह तो कथनमात्र है। वह तो इसमें श्लोक आ गया है न? ९०वीं गाथा में, नहीं? ९० गाथा का कलश। ९०वाँ आया या बाद में

आया ? क्या कहा ? बाद में आया, बाद में। **मोक्ष का कुछ कथनमात्र...** ९१वीं गाथा के नीचे। ९१ वीं गाथा, उसके नीचे। वह है ९० गाथा की टीका परन्तु ९१ के नीचे। १७२ पृष्ठ है। **जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र (कहनेमात्र) कारण है...** व्यवहार है, वह तो कहनेमात्र है। आहाहा! **उसे भी (अर्थात् व्यवहार-रत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में सुना है...** यह भव-भव में व्यवहाररत्नत्रय को सब सुना है **और आचरा (आचरण में लिया) है;...** देखो! व्यवहारक्रिया और व्यवहार समकित और व्यवहार प्रतिक्रमण, यह तो व्यवहार अनन्त बार प्रत्येक जीव ने आचरण किया है। सुना भी है और आचरण भी किया है। है ? आहाहा!

परन्तु भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (अनेक भवों में) सुना है और आचरा (आचरण में लिया) है; परन्तु अरे रे! खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है... पूर्णानन्द प्रभु अकेला ज्ञान ही स्वरूप है, जिसमें व्यवहार की गन्ध नहीं, जिसमें व्यवहार का स्पर्श नहीं। **अरे रे! खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है उसे (अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसे परमात्मतत्त्व को) जीव ने सुना-आचरा नहीं है, नहीं है।** दो बार कहा। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है, विकल्पमात्र उसमें नहीं है। आहाहा! मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प भी जिसमें नहीं है। आहाहा! वह इसने अनन्त बार सुना है... आहाहा! परन्तु कहते हैं कि ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा को जीव ने सुना और आचरण किया नहीं है। अकेला मैं ज्ञानानन्द ही हूँ। कोई दया, दान के विकल्प, वह मेरी चीज़ है नहीं, यह इसने सुना नहीं, आचरण नहीं किया। यह आचरण नहीं किया, ऐसा दो बार कहा। सुना नहीं। **आचरा नहीं है, नहीं है।** मूल पाठ में है न ? **'न च न च'** मूल कलश में है। **'न च न च बत कष्टं सर्वदा ज्ञानमेकम्'** अकेला ज्ञानस्वरूप ही है प्रभु। पूर्ण ज्ञान है, अपूर्ण नहीं, मलिनता नहीं, विकल्प नहीं। आहाहा! जिसमें संसार की गन्ध नहीं, ऐसा जो प्रभु ज्ञान का स्वरूप पूर्व में तूने सुना नहीं। आहाहा! और आचरा नहीं। सुना नहीं, फिर आचरे कहाँ से ? आचरा नहीं, नहीं—ऐसा कहा। सुना नहीं और **आचरा नहीं है, नहीं है।** आहाहा!

मुमुक्षु : देशनालब्धि तो बहुत बार मिली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार मिली है। उसमें उसके कारण क्या है ? वह सुना नहीं

कहा जाता। कार्य करे तो सुना कहा जाता है। देशनालब्धि अनन्त बार मिली परन्तु देशनालब्धि मिले बिना होता नहीं। सत्श्रवण न हुआ हो और हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता, तथापि उससे होता है, ऐसा भी नहीं बनता। आहाहा! ऐसी बात है। शास्त्र श्रवण से नहीं होता और तो भी देशनालब्धि मिले बिना होता भी नहीं, परन्तु होता है, तब देशनालब्धि का लक्ष्य भी नहीं होता। उसका लक्ष्य भी नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात। लक्ष्य द्रव्य पर है। त्रिकाली परमानन्द का नाथ आत्मा, सच्चिदानन्द प्रभु सत्ज्ञान और आनन्द से भरपूर, उसे तूने सुना नहीं और तूने आचरा भी नहीं। आहाहा!

अब यहाँ १५५ में भी यही कहते हैं। **द्रव्यश्रुत में शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप...** शुद्धनिश्चयनयस्वरूप परमात्मध्यानस्वरूप। शुद्धनिश्चय अर्थात् क्या? कि परमात्मा का ध्यान। स्वयं परमात्मा है, उसका ध्यान। आहाहा!

मुमुक्षु : उसका नाम ही....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो शुद्धनिश्चय उसे ही कहते हैं।

शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को जानकर,... आहाहा! **केवल स्वकार्य में परायण...** अपना कार्य करना है। किसी का कोई कर नहीं सकता। किसी की पंचायत में पड़ना नहीं। आहाहा! लाओ इसका ऐसा कर दूँ और इसे ऐसा कर दूँ और इसका ऐसा कर दूँ। यह कुछ तुझसे नहीं हो सकेगा। तू तेरा कार्य कर। आहाहा! **संग की आसक्ति को छोड़कर अकेला होकर,...** आहाहा! **मौनव्रत सहित,...** बोलना भी नहीं जहाँ अकेला होकर, ऐसा कहते हैं। **मौनव्रत सहित,...** अरे! अब यहाँ तक जाना इसे। आहाहा! पंचम काल के प्राणी को कहते हैं। ऐसा हो सकता है, इसलिए कहते हैं। आहाहा! **मौनव्रत सहित, समस्त पशुजनों (पशु समान अज्ञानी मूर्ख मनुष्यों) द्वारा निन्दा किये जाने पर भी...** आहाहा! अज्ञानी जैसे लोग वे तो निन्दा करें। ऐ.. ऐसा है और यह तो एकान्त है और अमुक है और अमुक है। है? **समस्त पशुजनों...** आहाहा! **(पशु समान अज्ञानी मूर्ख मनुष्यों) द्वारा निन्दा किये जाने पर भी...** लो! पूरे दिन आत्मा.. आत्मा.. करते हैं। आत्मा.. आत्मा.. आत्मा पूरे दिन आत्मा नहीं, यहाँ तो तीनों काल आत्मा है। पूरे दिन तो उसका लक्ष्य करना है। वस्तु तो त्रिकाल है। आहाहा! ऐसा कहाँ सुना था चिमनभाई? नहीं? हिम्मतभाई के पास सुना नहीं था? तुम्हारे पिता के पास? आहाहा!

(पशु समान अज्ञानी मूर्ख मनुष्यों) द्वारा निन्दा किये जाने पर भी... आहाहा! **अभिन्न रहकर,...** अर्थात् **छिन्नभिन्न हुए बिना;...** विकल्प किये बिना। भले पशुजन समान अज्ञानी बोले, उनके सन्मुख देखना नहीं। अभिन्न में भिन्न करना नहीं। भेद ऐसे विकल्प को करना नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : गाँव के मुख पर कहीं पट्टी बँधेगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्द कर अर्थात् पट्टी बँधी हुई ही है। आहाहा! दुनिया बोले। दुनिया के मुँह पर कहीं पट्टी बँधती है? इसलिए कहा, **पशुजनों...** आहाहा! ढोर जैसे मनुष्य, सत्य निश्चय को न समझनेवाले, निश्चय की निन्दा करनेवाले, निश्चय की मजाक करनेवाले, व्यवहार की प्रशंसा करनेवाले। आहाहा!

पशुजनों (पशु समान अज्ञानी मूर्ख मनुष्यों) द्वारा निन्दा किये जाने पर भी अभिन्न... भले वे निन्दा करे। आहाहा! तुझे क्या? दूसरे चाहे जो माने, उसमें इसे क्या? आहाहा! **अभिन्न रहकर,...** अर्थात् **छिन्नभिन्न हुए बिना; अखण्डित; अच्युत।** भेद पड़े बिना, विकल्प किये बिना, अखण्डित रहकर। आहाहा! यह प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान अखण्ड रहकर करना, कहते हैं। आहाहा! हमारे वहाँ संघवी के उपाश्रय जाए, लोग शाम को जाए प्रतिक्रमण करने। लींबडी के उपाश्रय जाते हैं न? सब प्रतिक्रमण करे। आहाहा! पीछे घर है। हरिचन्द की बहिन का। 'खस'वाले हरिचन्द है न? उनकी बहिन का घर है। वह स्थानकवासी है। यहाँ आवे परन्तु यह बात जँचती नहीं। आहाहा! बहुत वर्ष का सम्प्रदाय का पोषण हो न, इसलिए ये बात क्या कहते हैं यह? व्यवहार की तो बात (करते नहीं)। अन्दर आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. आत्मा, आत्मा अन्दर हाथ आता नहीं और आत्मा.. आत्मा.. आत्मा करते हैं। परन्तु जाननेवाले बिना जानता कौन है? दूसरे को जानता है, वह कौन? जाननेवाला स्वयं ही प्रसिद्ध है। दूसरे को जाननेवाला स्वयं प्रसिद्ध है। आहाहा! स्व और पर को जाननेवाला प्रसिद्ध आत्मा है। आहाहा!

निजकार्य को—यह निजकार्य ही है। आहाहा! कमाना और विवाह करना और दुकान का धन्धा करना, वह निजकार्य नहीं है, कहते हैं। वे सब पाप कार्य हैं। आहाहा! मकान में ध्यान रखना कि लोग कैसे काम करते हैं और किस प्रकार काम करते हैं? कितना काम किया? सब ध्यान रखना, वह कुछ स्वकार्य नहीं। वह पापकार्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो ऐसा ही कहना पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दूसरी बात कहाँ है ? एक तत्त्व के अतिरिक्त दूसरी वस्तु को सम्बन्ध क्या है ? तत्त्व है या नहीं ? तत्त्व है तो है तो है। वह दूसरे के कारण है या अपने कारण से है ? और दूसरे का तो उसमें अभाव है। यदि अभाव न हो तो अपना भाव ही रह सके नहीं। स्वतत्त्व है और परतत्त्व से नहीं है। आहाहा! तब तो उसकी स्वतन्त्रता की पूर्णता है। वह विकल्प से भी नहीं। व्यवहार दया, दान के विकल्प से भी नहीं। आहाहा! अरे! निश्चय प्रतिक्रमणादि की पर्याय से भी वह नहीं। वह तो ध्रुव है। वह तो उसके आश्रय से यह क्रिया होती है। यह क्रिया कहीं ध्रुव में घुस नहीं गयी है। आहाहा! कठिन काम है, बहुत लम्बा ले जाए... मार्ग बापू ऐसा है। चौरासी में भटक रहा है। आहाहा! देखो न! किस प्रकार से लोग मर जाते हैं! कुचल कर मर जाते हैं, उसमें मर जाते हैं, वह मुम्बई में देखो न कितने तीन, चार, पाँच, छह हमेशा मरते हैं। ट्रक में कुचलकर या अमुक में भटककर, गाड़ी में भटककर, कुचलकर मरे हुए पड़े ही होते हैं। वह क्या कहलाता है ? बस को खड़ी रखना पड़े। आदमी मर जाए इसलिए। पुलिस इकट्ठी हो। यह देखा है। निकले हों न, आहाहा! यह संसार।

यहाँ तो कहते हैं, पशुजनों द्वारा भले निन्दा करे **निजकार्य को—कि जो निजकार्य निर्वाणरूपी सुलोचना के...** आहाहा! जो निजकार्य मोक्षरूपी सुलोचना अर्थात् स्त्री। अब वहाँ मोक्ष को डाला। भले इस भव में न हो परन्तु अन्य भव में मोक्ष होगा। मोक्ष के लिये करना है। ध्येय है आत्मा; साध्य है मोक्ष। ध्येय है धर्म धरनेवाला धर्मी; साध्य है परमात्मदशा पर्याय। इसके अतिरिक्त दूसरी बात व्यवहार है। आहाहा! इसलिए कहते हैं... आहाहा! **निजकार्य को—कि जो निजकार्य निर्वाणरूपी सुलोचना के सम्भोगसौख्य का मूल है...** निर्वाणरूपी जो परिणति, मोक्षरूपी जो आनन्द की परिणति, उसके अनुभव के सुख का मूल है। **उसे—निरन्तर साधना चाहिए।** आहाहा! उसे निरन्तर साधना चाहिए। आहाहा! यह तो पहले इनकार किया कि निर्वाण का ध्यान है नहीं, परन्तु तू ध्यान तो ऐसा कर। अभी भले न हो। अमुक भव में होगा, सर्वथा ऐसा तो कर। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)